Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरार्द्ध

गीता वेद-विरुद्ध है

श्रीमद्भगवद्गीता वेद विरुद्ध है। गीता में वेद निन्दा, नारी निन्दा, यज्ञ निन्दा, योग निन्दा एवं अवतारवाद हैं। इसमें आत्मा और परमात्मा की भ्रमात्मक व्याख्या, निष्काम कर्म का मिथ्या सिद्धान्त, पापों के फल से मुक्ति के नुस्खें और हमेशा के लिए मुक्ति का प्रलोभन हैं।

देखिये—

(१) वेद निन्दा

(क) त्रैगुण्य विषया वेदा, निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो, निर्योगक्षेम आत्मवान् ।।गी०२/४५

अर्थ- हे अर्जुन! वेद ३ गुणों (सत्त्व, रज, तम) के कार्य रूप समस्त भोगों एवं उनके साधनों का प्रतिपादन करने वाले हैं। तुम उनमें आसक्तिहीन, हर्ष-शोकादि द्वन्द्वों से रहित, नित्य परमात्मा में स्थित, योग क्षेम को न चाहने वाला हो।

समीक्षा:— लगता है गीताकार ने वेदों की शकल भी नहीं देखी थी, अन्यथा वह ऐसा कदापि न लिखता। यदि वह वेद पढ़ा होता तो उसे वेदों में सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान को प्रतिपादित करने वाले मंत्र मिल जाते।

गीताकार का निर्योग क्षेम (योग क्षेम को न चाहने वाला हो) लिखना वेद विरुद्ध है, क्योंकि वेद कहता है-

योगक्षेमो नः कल्पताम् ।।यजु० २/२२
अर्थात् अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की सुरक्षा हो।

(ख) यावनार्थ उदपाने, सर्वतः सम्प्लुतोदके ।
तावान् सर्वेषु वेदेषु, ब्राह्मणस्य विजानतः ।। गी० २/४६

अर्थ- जैसे बड़े जलाशय को प्राप्त होने पर छोटे जलाशय से जितना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोजन रहता है, वैसे ही गीता को जान लेने पर वेद से उतना ही प्रयोजन रहता है।

समीक्षाः- गीताकार ने वेद को छोटा जलाशय तथा गीता को बड़ा जलाशय बताकर वेद की निन्दा किया है। चूंकि नास्तिको वेद निन्दकः। (मनु०) अर्थात् जो वेद की निन्दा करता है वह नास्तिक है। इसलिए वेद की निन्दा करने से गीताकार भी नास्तिक था।

(२) नारी निन्दा

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य, येऽपि स्युः पापयोन्नयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्राः, तेऽपि यान्ति परां गतिम्।। गी० ६/३२

अर्थ- हे पार्थ! स्त्री, वैश्य तथा शूद्र जो पाप योनि हैं वे भी मेरी शरण में आकर परम गति (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं।

समीक्षाः- स्त्री, शूद्र तथा वैश्य को पापयोनि बताना गीताकार का उनके प्रति अन्याय एवं अक्षम्य अपराध है।

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान भारती पुस्तकालय
तिथी
पु०सं०

देखिये वेद कहता है-

अहं केतुः मूर्धाहं, अहमुग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः, सेहानाया उपाचरेत्।।
अर्थात् नारी राष्ट्र का केतु (झंडा) है।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्, बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः, पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।। यजु०३१।११

अर्थात् राष्ट्र रूपी शरीर का पेट वैश्य तथा पैर शूद्र है।

(३) यज्ञ निन्दा

अहं क्रतुरहं यज्ञः, स्वधाहं अहमौषधम्।
मन्त्रोऽहं अहमेवाज्यं, अहंअग्निरहं हुतम्।। गी० ६/१६

अर्थ- कर्मकाण्ड मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, औषधि मैं हूँ, मंत्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ, आहुति भी मैं हूँ।

समीक्षाः- यहाँ गीताकार ने कृष्ण को यज्ञ बताकर अप्रत्यक्ष रूप से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ की निन्दा किया है।

वैदिक धर्म में यज्ञ जीवन की आधारशिला है। प्रत्येक कर्मकाण्ड, प्रत्येक संस्कार तथा प्रत्येक शुभ कार्य यज्ञ से ही शुरू होता है।

शास्त्र कहता है- यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्मः। (तै. ब्रा.)

अर्थात् यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है। इससे बड़ा कोई कर्म नहीं।

वेद कहता है- अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। (यजु० २३/६२)

अर्थात् यह यज्ञ संसार की नाभि है। जिस प्रकार नाभि (Umblicus) द्वारा गर्भस्थ शिशु का पोषण होता है उसी प्रकार यज्ञ द्वारा सारे संसार का (जड़ एवं चेतन सभी का) पोषण होता है।

(४) योग निन्दा

(क) ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म, व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजेन्देहं, स याति परमं गतिम् ।।गी० ८/१३

अथात (कृष्ण कहते हैं) जो एक अविनाशी ब्रह्म ओऽम् का जप करता हुआ, मेरा चिन्तन करता हुआ शरीर त्यागकर जाता है, वह परम गति को प्राप्त होता है।

समीक्षाः- यहाँ गीतकार ने कृष्ण को ओऽम् वाची ब्रह्म बताकर योग की निन्दा की है। देखो! 'योग' शब्द का अर्थ है जोड़। गणित के विषय में योग का अर्थ अंको का जोड़ है और ईश्वरोपासना के सम्बन्ध में आत्मा और परमात्मा का मिलन। वेद कहता है-

ओऽम् क्रतो स्मरः (यजु० ४०।१५) ओऽम् का जप करो तो गीताकार ने चालाकी की और कृष्ण को ही ओऽम् बता दिया।

(ख) योगः कर्मसु कौशलम् ।।गी० २/५०

अर्थात् कर्म करने की कुशलता ही योग है।

समीक्षाः- आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० श्रीराम आर्य ने लिखा है—

"यदि गीता के योग की परिभाषा को सत्य स्वीकार किया जायेगा तो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालाब में मछली पकड़ने में दक्ष वगुला, जेब काटने में दक्ष गिरहकट, डाका डालने में दक्ष डकैत आदि सभी योगी हो जायेंगे। 'योग' शब्द की यह कैसी मजाक है? देखो! शास्त्र में लिखा है- योगः चित्तवृत्ति निरोधः (यो० द० १।२)

अर्थात् चित्त (मन) की वृत्तियों का निरोध करके आत्मा को परमात्मा की उपासना में लगाना योग कहलाता है।"

गीता विवेचन

(५) अवतारवाद

(i) अजोऽपि सन् अव्ययात्मा, भूतानां ईश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वां अधिष्ठाय, संभवामि आत्ममायया ।।गी० ४/६

अर्थात् (कृष्ण कहते हैं) मैं अजन्मा और अविनाशी होते हुए भी तथा सभी प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति को अधीन करके योगमाया से अवतार लेता हूँ।

(ii) यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानं अधर्मस्य,तदात्मानं सृजाम्यहम् ।। गी० ४/७

अर्थात् हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अवतार लेता हूँ।

(iii) परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय, संभवामि युगे युगे ।।गी० ४/८

अर्थात् सज्जनों की रक्षा, दुर्जनों का विनाश और धर्म की स्थापना के लिए मैं प्रत्येक युग में अवतार लेता हूँ।

(iv) पिता अहमस्य जगतो, माता धाता पितामहः ।
वद्य पवित्र आकार, ऋक्साम यजरव च ।।गी० ६/१७

अर्थात् इस जगत् का धारण करने वाला, माता, पिता, पितामह, ओऽम् एवं ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ।

(v) ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म, व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजेन्देहं, स याति परमं गतिम् ।।गी० ८/१३

अर्थात् जो व्यक्ति ओऽम् इस एक अविनाशी ब्रह्मरूप मुझको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्तन करता हुआ शरीर त्याग देता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है।

(vi) आब्रह्मभुवनाल्लोकाः, पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय, पुनर्जन्म न विद्यते ।।गी० ८/१६

अर्थात् हे अर्जुन! ब्रह्मलोक पर्यन्त सब लोक पुनरावर्ती हैं, परन्तु हे कौन्तेय! मुझको प्राप्त होने पर पुनर्जन्म नहीं होता।

(vii) न मां दुष्कृतिनो मूढाः, प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
मायया अपहृतज्ञाना, आसुरं भावमाश्रिताः ।।गी० ७/१५

अर्थात् माया के द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है ऐसे आसुर-स्वभाव वाले दुष्ट, नीच एवं मूर्खलोग मुझको नहीं भजते।

(viii) अवजानन्ति मां मूढाः, मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावं अजानन्तो, मम भूतमहेश्वरम् ।।गी० ६/११

अर्थात् मेरे परम भाव को न जानने वाले मूर्खलोग मनुष्य देहधारी जीवों के ईश्वर मुझको तुच्छ समझते हैं।

समीक्षाः- वेद के अनुसार ईश्वर अवतार नहीं लेता। क्योंकि वेद कहता है—

ओऽम् खं ब्रह्म। (यजु० ४०/१७) ईश्वर सर्वव्यापक है।

न तस्य प्रतिमास्ति। (यजु० ४०।८) उसकी मूर्ति नहीं है।

वह अज[1] एवं अकाय[2] है। ईश्वर का नाम ओऽम् है। ओऽम् का जाप करो- ओऽम् क्रतो स्मर।(यजु० ४०।१५)

लेकिन वेद के विरुद्ध गीता कहती है कि ईश्वर अवतार लेता है। कृष्ण ईश्वर थे (गी० ४/६) जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब कृष्ण अवतार लेते हैं (गी० ४/७) और साधुओं की रक्षा तथा दुष्टों का संहार करते हैं (गी ४/८) कृष्ण ही संसार के मालिक हैं (गी० ६/१७) कृष्ण ही ओऽम् हैं और वही मुक्तिदाता हैं। (गी० ८/१३)

---

१. शं नो अज एकपाद देवो।।(ऋ० ७।३५।१३)

२. स पर्यगाच्छुक्रमकायम्।।(यजु० ४०।८)

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्ण ही सच्ची मुक्ति देने वाले हैं। (गी० ८/१६)

इतना ही नहीं गीताकार महानीच था। उसने कृष्ण को ईश्वर न मानने वालों तथा कृष्ण को न भजने वालों को गालियां दिया है। (गी० ६/११ एवं ७/१५)

(६) आत्मा और परमात्मा की भ्रमात्मक व्याख्या

(i) अच्छेद्योऽयं अदाह्योऽयं, अक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुः, अचलोऽयं सनातनः ।।गी० २/२४

अर्थात् यह आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है। यह नित्य, सर्वव्यापक, अचल, स्थिर एवं सनातन है।

समीक्षाः- आत्मा नित्य एवं सनातन है लेकिन सर्वव्यापक एवं अचल नहीं है।

वेद कहता है- खं ब्रह्म। (यजु. ४०/१७)

अर्थात् ईश्वर सर्वव्यापक है। वह सब जगह विद्यमान है। उसे कहीं आने-जाने की आवश्यकता नहीं। इसलिए ईश्वर ही अचल एवं स्थिर है।

गीताकार की दृष्टि में आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है।लेकिन आत्मा सर्वव्यापक और अचल नहीं है; क्योंकि ऐसा होता तो जड़ पदार्थों में भी आत्मा मौजूद होता और कुर्सी, मेज आदि चेतन की तरह व्यवहार करते।

कुछ विद्वान सर्वगतः का अर्थ सभी जगहों में जाने वाला करते हैं। मैं पूछता हूँ कि क्या आत्मा जड़ पदार्थों में भी जा सकता है? यदि आत्मा अचल होता तो उसका पुनर्जन्म भी नहीं होता। फिर जगत का खेल ही खत्म हो जाता।

वास्तव में जीवात्मा एकदेशीय और चल है। गीता से भी इस बात की पुष्टि होती है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि, अन्यानि संयाति नवानि देही ।।
गी० २/२२

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ- जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र को त्यागकर दूसरे नये वस्त्र को धारण करता है, वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को त्याग कर दूसरे नये शरीर को प्राप्त होता है।

(ii) उपद्रष्टा अनुमन्ता च, भर्त्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मा इति चाप्युक्तो, देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ।। गी० १३/२२

अर्थात् इस देह में स्थित यह आत्मा वास्तव में परमात्मा ही है। वही साक्षी होने से उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देने वाला होने से अनुमन्ता, सबका भरण-पोषण करने वाला होने से भर्त्ता, जीव रूप से भोक्ता, ब्रह्मा आदि का स्वामी होने से महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानन्द घन होने से परमात्मा-ऐसा कहा गया है।

समीक्षाः- यहाँ गीताकार ने खुले शब्दों में आत्मा और परमात्मा को एक ही बताया है।

(iii) ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि कर्षति ।।गी० १५/७

अर्थात् इस देह में यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है और वही इस प्रकृति में स्थित मन और पांचों इन्द्रियों को आकर्षण करता है।

समीक्षाः- यहाँ गीतकार ने आत्मा को परमात्मा का अंश माना है, अर्थात् उसकी दृष्टि में आत्मा की स्वतंत्र सत्ता नहीं है।

मैं पूछता हूँ कि परमात्मा के सामने ऐसी कौन सी मुसीबत आ पड़ी थी कि उसे अपने स्वरूप को टुकड़ों में विभक्त करना पड़ा? अथवा किसने परमात्मा को खंड-खंड कर जीवों की उत्पत्ति की?

विज्ञान का सिद्धान्त है कि अंश में अंशी के गुण होते हैं परन्तु जीवात्मा में परमात्मा के गुण (सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता आदि) क्यों नहीं हैं? यदि जीव ईश्वर का अंश है तो जीव भी छोटा ईश्वर हुआ। फिर ईश्वर (कृष्ण) ने छोटे ईश्वरों (जीवों) को मूर्ख आदि कहकर क्यों फटकारा? ईश्वर ने छोटे ईश्वरों को जन्म-मरण के बखेड़ा में क्यों फँसा रखा है? जैसे घड़े के आकाश घड़े फूटने पर व्यापक आकाश में मिल जाते हैं वैसे ही शरीर त्यागते ही छोटे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर बड़े ईश्वर में क्यों नहीं मिल जाते हैं?

देखो! आत्मा परमात्मा एक नहीं है। और आत्मा को परमात्मा का अंश बताना भी गलत है। आत्मा और परमात्मा अलग-अलग हैं तथा उनकी स्वतंत्र सत्ता है। इतना ही नहीं, इन दोनों के अलावा एक और तीसरी सत्ता है जिसे प्रकृति कहते हैं।

ईश्वर, जीव और प्रकृति-यही वैदिक त्रैतवाद है। प्रमाण—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वति, अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।

—ऋग्वेद १/१६४/२०

अर्थात् इस प्रकृति रूपी वृक्ष पर जीवात्मा और परमात्मा रूपी दो पक्षी विराजमान हैं। जीवात्मा उसके फलों का भोक्ता है तथा परमात्मा साक्षी मात्र है।

ईश्वर, जीव और प्रकृति— ये तीन जगत के अनादि कारण हैं। ईश्वर निमित्त कारण है जिसके बनाने से जगत बना है। दूसरे शब्दों में ईश्वर जगत् का कर्त्ता-धर्त्ता-संहर्त्ता है। जीव प्रयोजन कारण है, जिसके लिए जगत् बना है और प्रकृति उपादान कारण है, जिससे जगत् बना है।

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप है। जीव सत् चित्त और प्रकृति सत् है। सत् उसे कहते हैं जिसकी सत्ता है, चित्त उसे कहते हैं जिसमें चेतनता है, और आनन्द जिसमें आनन्द ही आनन्द है। ईश्वर एक, सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है। जीव अनेक, एकदेशीय और अल्पज्ञ हैं। प्रकृति सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणुओं (जिनका विभाजन नहीं हो सकता) की साम्यावस्था का नाम है। प्रकृति जड़ है। प्रकृति से अवस्थान्तर होकर जगत बनता है। जगत अर्थात् ज=बनने वाला और गत=बिगड़ने वाला। जीव कर्म करने में स्वतंत्र है परन्तु ईश्वर की व्यवस्थानुसार कर्मफल भोगने में परतंत्र है।

(७) निष्काम कर्म का सिद्धान्त

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूः, मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।। गी० २/४७

तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फल में कभी नहीं। इसलिए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू कर्मफल की इच्छा मत करो, तू केवल कर्म करो।

समीक्षाः— आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान् डा० श्रीराम आर्य ने लिखा है—

गीता का मुख्य विषय निष्काम कर्म की शिक्षा माना जाता है और इस श्लोक को गीता का सार कहा जाता है। गीता कहती है कर्म करो लेकिन फल की इच्छा मत करो। गीता की यह बात बिल्कुल गलत है। क्योंकि-

मनुष्यः कस्मात्? मत्वा कर्माणि सीव्यति । निरुक्त ३/७

मनुष्य कौन है? मनुष्य वह है जो विचार कर कार्य करे।

विचारशील (मननशील) को ही मनुष्य कहते हैं। मनुष्य अपनी बुद्धि से सफलता, असफलता का विचार कर लाभ-हानि का हिसाब लगाकर, भला-बुरा परिणाम को सोचकर ही किसी कार्य में हाथ लगाता है। इसीलिए एक कहावत है—

बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।

एक बात और है-

दूर दृष्टि, पक्का इरादा, कड़ी मेहनत।

अर्थात् दूर दृष्टि= कार्य के भले-बुरे का विचार

पक्का इरादा= बार-बार प्रयत्न करके फल को प्राप्त करने का संकल्प

कड़ी मेहनत = लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कठिन परिश्रम करना।

चूँकि गीता कर्मफल की इच्छा करने को मना करती है। इसलिए गीता का सिद्धान्त व्यावहारिक कदापि नहीं है, केवल तमाशा है। मैं पूछता हूँ क्या ऐसा कोई भी मनुष्य है जो कार्य करता हो किन्तु फल (परिणाम) न सोचता हो? नहीं। मनुष्य की बात तो दूर एक चींटी भी कहीं मीठी चीज पा जाती है तो सीधे अपने बिल की ओर ही घसीटकर ले जाती है। उसके दिमाग में भी यह बात होती है कि उसे इस वस्तु को अपने बिल में ले चलना है।

एक विद्यार्थी परीक्षा पास करने का संकल्प लेकर विद्याध्ययन करता है। उसके सामने डाक्टर, इंजिनीयर, वकील आदि बनने का लक्ष्य होता है। यदि सेना शत्रु पर रामआसरे अन्धाधुन्ध बिना लक्ष्य के गोलियां चलाये तो क्या वह सफल होगी? कदापि नहीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्काम कर्म तो स्वयं कृष्ण ने भी नहीं किया था गीता के अनुसार जिनका यह उपदेश है। वे महाभारत युद्ध रोकने की कामना से ही पांडवों के सन्धि प्रस्ताव को लेकर हस्तिनापुर गये थे। शिशुपाल का वध करने के लिए ही शस्त्र चलाये थे। कंस का बध करने के लिए ही उसे गद्दी से खींचकर प्रहार किये थे। जरासंध से झगड़ा बचाने के लिए ही गोकुल से द्वारिका चले गये थे। कौरवों का विनाश करने के लिए ही अर्जुन के रथ की बागडोर पकड़े थे।"

—गीता विवेचन

निष्काम कर्म का सिद्धान्त वेद विरुद्ध है—

ओइम् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।।
ओइम् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव।।

अर्थात् भक्त ईश्वर से प्रार्थना इस कामना से करता है कि प्रभु उसकी बुद्धि को बढ़ायें, दुर्गुण दूर करें और सद्गुण प्राप्त करायें।

(८) पापों के फल से मुक्ति के नुस्खें

गीताकार ने पापों के फल से मुक्ति के ४ नुस्खें लिखे हैं—

(क) यो मां अजं अनादिं च, वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु, सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। गी०१०।३

अर्थात् जो मुझे अन्जमा, अनादि तथा लोकों का महान् ईश्वर जानता है; वह मनुष्यों में ज्ञानवान, पुरुष सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

(ख) अन्तकाले च मामेव, स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं, याति नास्ति अत्र संशयः ।। गी० ८/५

अर्थात् जो व्यक्ति मुझे ही स्मरण करता हुआ अन्त में शरीर को त्याग देता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है (उसे मुक्ति मिल जाती है)। इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) सर्वधर्मान्परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।। गी० १८/६६

सब धर्मों (कर्मों) को छोड़कर मेरी शरण में आओ, मैं तुझे सभी पापों से मुक्त कर दूँगा; शोक मत करो।

(घ) य इमं परमं गुह्यं, मद्भक्तेषु अभिभास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा, मां एवेषु अति असंशयः ।। गी० १८/६८

जो व्यक्ति मुझसे परम प्रेम करके, इस परम रहस्ययुक्त गीता को मेरे भक्तों में कहेगा (गीता का प्रचार करेगा), वह मुझको ही प्राप्त होगा। इसमें कोई संदेह नहीं है।

समीक्षाः-'सैयां भये कोतवाल, अब डर काहेको।'

जब पाप माफ की गारंटी गीता ने देदी तो पाप करने से कौन डरेगा? गीताकार ने पाप से मुक्ति के नुस्खें भी बता दिये हैं (जैसे पुराणकारों ने बताये हैं)। लेकिन सावधान!

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ेगा।

पक्वं पक्वः पुनरा विशाति। अथर्ववेद

जैसी करनी, तैसी भरनी।

(६) हमेशा के लिए मुक्ति

मां उपेत्य तु कौन्तेय, पुनर्जन्म न विद्यते।।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते, तद्धाम परमं मम्।।
गी० ८/१६; १५/६

कृष्ण लोक को प्राप्त होने पर पुनर्जन्म नहीं होता (फिर कभी नहीं लौटना पड़ता) सदा के लिए मुक्ति हो जाती है।

समीक्षाः-गीता मुक्तिकाल की कोई अवधि नहीं मानती यह वेद विरुद्ध है। देखो, वेद में लिखा है-

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां, मनामहे चारु देवस्य नाम ।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्, पितरं च दृशेयं मातरं च ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां, मनामहे चारु देवस्य नाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात्, पितरं च दृशेयं मातरं च ।।
ऋग्वेद १/२४/१,२

(प्रश्न) हम लोग किसका नाम पवित्र जानें ? कौन नाशरहित पदार्थों के मध्य में वर्तमान देव सदा प्रकाशस्वरूप है? कौन हमको मुक्ति का सुख भुगाकर इस संसार में पुनः जन्म देता और माता-पिता का दर्शन कराता है?

उत्तर— हम परमात्मा का नाम पवित्र जानें। वही नाशरहित पदार्थों के मध्य में वर्तमान देव सदा प्रकाशस्वरूप है। वही हमको मुक्ति में आनन्द भुगाकर इस संसार में पुनः जन्म देता और माता-पिता का दर्शन कराता है।

गीता का मुक्ति से न लौटने का सिद्धान्त विज्ञान के भी विपरीत है, क्योंकि विज्ञान के अनुसार जिसका आदि है उसका अन्त निश्चित है। जबकि गीता मुक्ति काल का आदि तो मानती है परन्तु अन्त नहीं।

नोटः- यदि मोक्ष (मुक्ति) काल की समाप्ति के बाद लौटने की व्यवस्था न हो तो मोक्ष ही जीव के लिए जेल-खाना हो जाय क्योंकि जीवके आनन्द भोगने की भी सीमा होती है। जैसे- कोई व्यक्ति आराम करने या सोने के लिए खाट पर लेट जाये तो एक समय ऐसा भी आता है कि उसकी आराम करने की शक्ति समाप्त हो जाती है। और उठकर पुनः कर्म करने की इच्छा होती है। यदि उसे खाट पर लेटे रहने को विवश किया जाये तो वही आनन्द जिसके लिए वह तड़प रहा था, बड़ी बेचैनी मालुम होती है। इसीप्रकार मोक्षकाल की समाप्ति पर जीवों को पुर्नजन्म की इच्छा होती है।

प्रश्न (१) जो मुक्ति से जीव फिर आता है तो वह कितने समय तक मुक्ति में रहता है?

उत्तर— ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे।

यह मुण्डकोपनिषद् का वचन है। वे मुक्त जीव मुक्ति को प्राप्त होके ब्रह्म में परान्तकाल तक आनन्द को भोगके पुनः महाकल्प के पश्चात् इस संसार में आते हैं।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४३,२०,००० वर्ष की एक चतुर्युगी, २,००० चतुर्युगियों का एक अहोरात्र (ब्रह्म का दिन), ३० अहोरात्र का एक महीना, ऐसे १२ महीनों का एक वर्ष, ऐसे १०० वर्षों का परान्तकाल होता है।

इसको गणित की रीति से यथावत् समझ लीजिए।*

—सत्यार्थ प्रकाश, समु०६

प्रश्न (२) जब ऐसी तो मुक्ति भी जन्म—मरण के सदृश है। इसलिये श्रम करना व्यर्थ है।

उत्तरः- मुक्ति जन्म-मरण के सदृश नहीं, किन्तु जब तक ३६,००० बार उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है, उतने समय पर्यन्त जीवों को मुक्ति के आनन्द में रहना, दुःख का न होना क्या छोटी बात है?

जब आज खाते-पीते हो, कल भूख लगने वाली है; पुनः इसका उपाय क्यों करते हो?

जब क्षुधा, तृषा, क्षुद्र धन, राज्य, प्रतिष्ठा, स्त्री, संतान आदि के लिए उपाय करना आवश्यक है तो मुक्ति के लिए क्यों न करना?

जैसे मरना आवश्यक है तो भी जीवन का उपाय किया जाता है, वैसे ही मुक्ति से लौटकर जन्म में आना है तथापि उसका उपाय करना अत्यावश्यक है।

—सत्यार्थ प्रकाश, समु०६

।। शमित्योम् ।।

---

* देखिए-मेरी लिखी पुस्तक 'दयानन्द की दार्शनिक मान्यताएँ'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.